श्रीश्रीगुरु- गौरांगौ जयतः

श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज

सम्पूर्ण शरणागति अर्थात् पीछे कुछ नहीं छोड़ना

श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज (उस समय श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय) सम्पूर्ण रूप से मठवास करने से पूर्व भारतीय रेलवे में नौकरी करते थे तथा उन्हें रेलवे की ओर से रहने के लिये एक स्थायी स्थान मिला हुआ था जिसमें १९२१ ई० में श्रील प्रभुपाद भी तीन दिन रहे थे। श्रील प्रभुपाद के तीन दिन के दिव्य सङ्ग के प्रभाव से श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय ने अपने जीवन को

श्रील प्रभुपाद की सेवा हेतु समर्पित करने का निश्चय किया। मुण्डकोपनिषद् (१.२.१२) के 'गुरुमेवाभिगच्छेत्' श्लोक के सिद्धान्त का पालन करते हुए उन्होंने समझा कि गुरु के पास सम्पूर्ण रूप से शरणागत होकर ही जाना चाहिये जिससे कि गुरु में एक बार जाकर वहाँ से पुनः पीछे छोड़ी गयी किसी वस्तु को लेने के लिये नहीं जाना पड़े। सब कुछ साथ में ले जाने से पुनः अन्ततः एक बार जाना पड़ेगा, ऐसी बात मन में नहीं आयेगी। अतएव वे अपने घर से मेज, कुर्सी, अलमारी इत्यादि सब कुछ ट्रक में भरकर मठ में ले आये तथा इस प्रकार उन्होंने 'गुरुमेवाभिगच्छेत्' का आदर्श प्रकाशित किया। इसी कारण वे पीछे कुछ भी छोड़कर नहीं गये।

श्रीमन्महाप्रभु के प्रियजन

श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज के साथ भिक्षा संग्रह करने तथा गौड़ीय मठ से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'गौड़ीय' के नवीन ग्राहकों को संग्रह करने के लिये विभिन्न कार्यालयों में जाते थे। उन दिनों साप्ताहिक गौड़ीय में श्रीमद्भागवतम् का कुछ-कुछ अंश प्रकाशित होता था तथा किसी-किसी स्थान पर श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुर आदि गौड़ीय वैष्णव आचार्यों का चित्र भी होता था।

एक दिन एक व्यक्ति ने श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य गोस्वामी महाराज से प्रश्न किया, “भागवत को तो भगवान् का अभिन्न कलेवर कहा जाता है तब फिर उसके भीतर किसी मनुष्य का चित्र क्यों रहेगा ?"

जिन किन्हीं कारणों से श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने तो कोई उत्तर नहीं दिया किन्तु श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय ने अत्यधिक सटीक उत्तर दिया, "ग्रन्थ - भागवत एवं भक्त-भागवत के वैशिष्ट्य तथा भक्तों के स्वभाव के विषय में बतलाने वाले बहुत से शास्त्रीय निगूढ़ रहस्यों को तुमने सम्पूर्ण रूप से नहीं समझा है, जैसा कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने श्रीगुर्वाष्टकम् में कहा है

साक्षाद्धरित्वेन
समस्तशास्त्रैरुक्तस्तथा भाव्यत एव
सद्भिः ।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य वन्दे
गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥

[निखिल शास्त्रों ने जिनका साक्षात् हरि के अभिन्न विग्रह रूप से गान किया है एवं साधुजन भी जिनकी उसी प्रकार से भावना करते हैं, जो भगवान् के एकान्त प्रिय हैं, मैं उन्हीं (भगवान् के अचिन्त्य - भेदाभेदप्रकाश विग्रह) श्रीगुरुदेव के पादपद्मों की वन्दना करता हूँ।]

"इन सब को जाने बिना तुम्हें कैसे समझ आयेगा कि साप्ताहिक गौड़ीय में प्रकाशित चित्र मनुष्यों के नहीं बल्कि मुक्त महापुरुषों के हैं तथा

यह भी तुम्हें नहीं समझ आयेगा कि ये मुक्त महापुरुष भगवान् से अपने सम्बन्ध के कारण उनसे उसी प्रकार अभिन्न हैं जिस प्रकार श्रीमद्भागवतम् भगवान् से अभिन्न है। "

अन्त में उन्होंने कहा, "मैं इतने उच्च ब्राह्मण कुल से हूँ कि मेरे पेशाब करने से तुम्हारे चौदह पीढ़ी के पुरुष उसे घट-घट करके पीयेंगे तथा स्वयं को कृतार्थ मानेंगे। परन्तु तुम 'मेरे उन प्रभु पर' जिनके श्रीचरणों में मैंने सिर झुकाया तथा 'उस पत्रिका पर' जिसे मैं वितरण करने के लिये आया उन पर प्रश्न उठा रहे हो !"

सन्ध्या के समय श्रील अरण्य गोस्वामी महाराज ने श्रील प्रभुपाद को बतलाया कि इस प्रकार किसी ने प्रश्न

किया था तथा मैं तो उत्तर नहीं दे पाया किन्तु मेरे साथ गये नये भक्त श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय ने यह उत्तर दिया।

बात सुनने के साथ-ही-साथ श्रील प्रभुपाद के नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह निकली। श्रील प्रभुपाद ने श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय को उपलक्ष्य करके कहा, "श्रीमन्महाप्रभु ने हमारी ओर से बात बोलने के लिए अपने एक निजजन को प्रेरित किया है।"

हम श्रील प्रभुपाद के जीवन चरित्र में सुनते हैं कि श्रीमन्महाप्रभु ने सपार्षद उनके समक्ष स्फुरित होकर शुद्ध भक्ति के विपुल प्रचार हेतु श्रील प्रभुपाद से धन, जन आदि प्रेरित

करने की बात कही थी तथा यहाँ श्रील प्रभुपाद ने स्वयं स्वीकार किया कि श्रीमन्महाप्रभु ने अपने निजजन श्री अतुलचन्द्र बन्धोपाध्याय को प्रेरित किया है।

अन्यों की श्रद्धा को वास्तव वस्तु में लगाना सर्वोत्तम भिक्षा-संग्रह

श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय सदैव कोटपैन्ट पहनकर भिक्षा - संग्रह करने जाते थे। एक दिन वे किसी सेठ

के घर गये। घण्टी बजाने पर स्वयं सेठजी ही बाहर आये।

जब श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय ने अपने गौड़ीय मठ से आने का परिचय दिया तो सेठजी ने कहा, "मेरा गौड़ीय मठ में विश्वास नहीं है।"

सेठजी की बात को अनसुना करके श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय घर के अन्दर की ओर चल दिये।

सेठ जी ने उन्हें पुनः कहा, “अरे भाई, तुमने सुना नहीं, मेरा गौड़ीय मठ में विश्वास नहीं है।"

श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने तब भी कुछ नहीं कहा और भीतर रखी कुर्सी पर बैठ गये।

सेठजी ने तीसरी बार चिढ़ते हुए अपनी बात को दोहराया, "मैंने कहा मेरा गौड़ीय मठ में विश्वास नहीं है।"

अब की बार श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने प्रत्युत्तर में कहा, "हाँ, हाँ। मैंने सुन लिया है कि तुम्हारा गौड़ीय मठ में विश्वास नहीं है, इसीलिए मैं तुम्हारा विश्वास उत्पन्न कराने के लिए यहाँ आया हूँ। यदि तुम्हारा विश्वास होता तो क्या तुम गौड़ीय मठ में जाये बिना रह सकते थे?" तब श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने उन्हें गौड़ीय मठ के वैशिष्ट्य, गौड़ीय मठ के उद्देश्य आदि के विषय में संक्षेप में बताया।

श्री अतुलचन्द्र प्रभु के पाण्डित्यपूर्ण वक्तव्य से अत्यन्त प्रभावित होकर सेठजी ने

कृतज्ञतापूर्वक उन्हें एक बहुत बड़ी धनराशि प्रणामी स्वरूप देनी चाही। श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने प्रणामी को अस्वीकार करते हुए कहा, "मेरी बात पर विश्वास करो, मैं प्रणामी लेने नहीं बल्कि आपकी श्रद्धा को उत्पन्न कराने के लिये ही आया था।"

सेठजी ने अत्यधिक सम्मानपूर्वक श्री अतुलचन्द्र प्रभु को स्वयं अपनी गाड़ी चलाकर गौड़ीय मठ तक छोड़ा और श्रील प्रभुपाद के दर्शन किये तथा उनके हाथ में ही प्रणामी दी एवं तब से प्रायः नित्यप्रति गौड़ीय मठ में आने लगे।

एक अपराधी का उद्धार

एक समय श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

ठाकुर कानपुर में अपने गणों के साथ प्रचार के उद्देश्य से गये थे। श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय कानपुर में भिक्षा-संग्रह रूपी सेवा कार्य से जब थोड़ी देर के लिये बाहर गये, उसी बीच कानपुर के जिलाधीश श्रील प्रभुपाद के दर्शनों के लिये आये तथा वार्तालाप करते समय उन्होंने हेयता व्यक्त करते हुए श्रील प्रभुपाद से कहा, "आपके साथ अधिकांश उच्च शिक्षित व्यक्ति हैं। क्या आपका मिशन शिक्षित को भिक्षुक बनाना है?" यह बात बोलकर जिलाधीश अशिष्टतापूर्वक वहाँ से चले गये।

बाद में जब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु श्रील प्रभुपाद के समक्ष आये तो श्रील प्रभुपाद ने उन्हें जिलाधीश द्वारा कही गयी बात से अवगत कराया। श्री

अतुलचन्द्र प्रभु को श्रील प्रभुपाद की बात सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो श्रील प्रभुपाद जिलाधीश के कटाक्ष से कुछ दुःखी हैं। वे साथ-ही-साथ ताँगे पर बैठकर जिलाधीश के निवास स्थान पर पहुँच गये तथा उन्होंने जिलाधीश से कहा, "तुमने श्रील प्रभुपाद जैसे महापुरुष, भगवान् के निजजन को जैसी बात बोली है, उससे तुम्हारा सर्वनाश अवश्यम्भावी है, तुमने आग से खेलने का प्रयास किया है, इससे अब तुम्हारी चौदह पीढ़ियाँ नरक यातना भोग करेंगी।"

जिलाधीश श्री अतुलचन्द्र प्रभुकी बातें सुनकर घबरा गये तथा उनसे अपने कर्त्तव्य के विषय में अनुनय-विनय पूर्वक पूछताछ करने लगे। तब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उनसे तत्क्षणात्

श्रील प्रभुपाद से क्षमा प्रार्थना तथा सेवा करने का परामर्श दिया।

जिलाधीश श्री अतुलचन्द्र के साथ ही श्रील प्रभुपाद के निकट आये। तब श्रीअतुलचन्द्र ने श्रील प्रभुपाद से कहा, “प्रभुपाद, आप जिलाधीश के प्रति प्रसन्न हो जाइये, जिससे उनका आपके चरणों में कोई अपराध न रह जाये।"

श्रील प्रभुपाद ने जिलाधीश को बहुत कथा श्रवण करायी तथा जिलाधीश ने ५०० रुपये देकर श्रील प्रभुपाद की सेवा की।

जिलाधीश को अपराध से बचाने के लिये श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने बहुत बड़ा दायित्व ग्रहण किया। उपरोक्त प्रसङ्ग में श्रीअतुलचन्द्र प्रभु का श्रील

प्रभुपाद के चरणकमलों में दृढ़ विश्वास, श्रील प्रभुपाद के चरणकमलों में अपराध करने वाले व्यक्ति की दुर्गति, अपराधी के उद्धार का उपाय तथा उसके उद्धार, उसके मङ्गल की चेष्टा आदि अनेक गुण प्रकाशित हुए हैं।

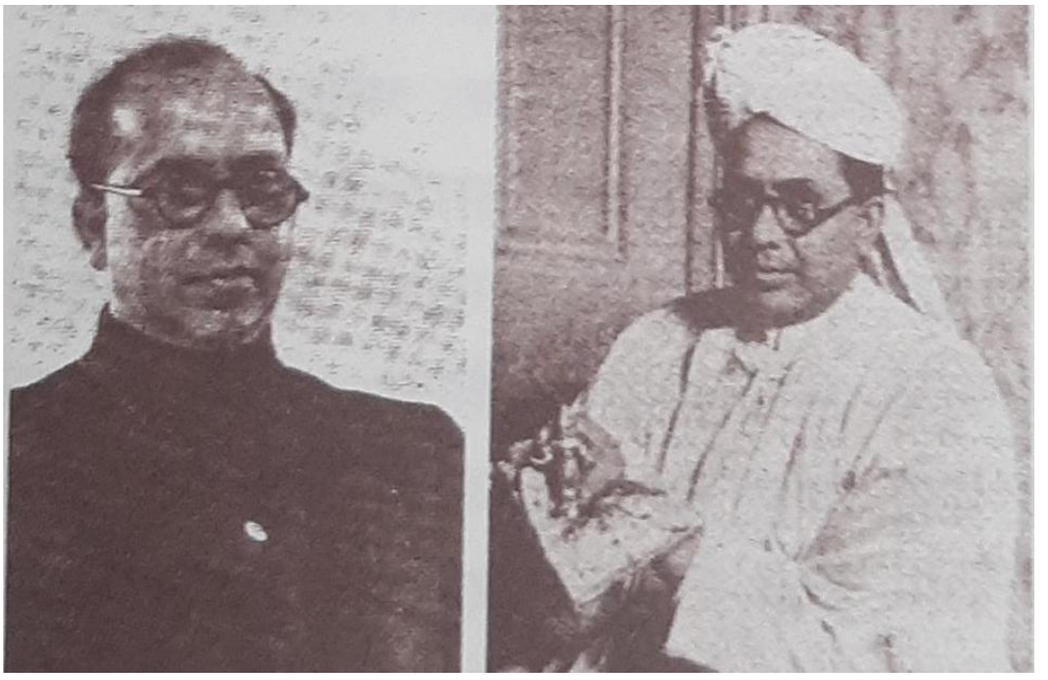

श्रील प्रभुपाद एवं उनके आश्रितों का प्रतिरक्षण

एक समय जब श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

ठाकुर सपरिकर श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा करते हुए श्रीधाम वृन्दावन पहुँचे, तब उस समय श्रीबाँके बिहारी मन्दिर के प्रबन्धक श्रीहलगु लाल ने वृन्दावन के प्रायः सभी प्रधान मन्दिरों में यह सम्वाद भेजा, "श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती अपने साथ महात्मा गाँधी के हरिजनों अर्थात् धोबी, भङ्गी, मेहतर, चमार आदि सभी जातियों के लोगों को लेकर चल रहा है। अतएव उन्हें मन्दिर में प्रवेश नहीं करने दिया जाये । "

"श्रील प्रभुपाद ने विशुद्ध दैव-वर्णाश्रम धर्म का प्रवर्त्तन किया है अर्थात् सामाजिक वर्ण एवं आश्रम का निर्धारण व्यक्ति की जाति अथवा कुल

से नहीं अपितु उसके आन्तरिक गुणों पर आधारित है। ”

जब श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय के कान में यह बात पड़ी, तब वे अपने साथ ब्राह्मण कुल में आविर्भूत श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज, गुरु महाराज (उस समय श्रीहयग्रीव ब्रह्मचारी), श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी (बाद में श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन गोस्वामी महाराज), श्रीप्रणवानन्द ब्रह्मचारी (बाद में श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज) आदि अनेक गुरुभ्राताओं को साथ में लेकर श्रीराधा - मदनमोहन मन्दिर के गोसाईं से भेंट करने के लिए गये।

श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय ने श्रीगोसाईंजी से वार्त्तालाप करते हुए उनसे पूछा, “क्या हम लोग जिन्होंने ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण किया है आपको भ्रष्ट, पतित आदि प्रतीत होते हैं अथवा विशुद्ध वैष्णव धर्म को पालन करने के लिये दृढ़व्रती होकर हमने शास्त्रीय आचरण ही किया है ? श्रील प्रभुपाद ने विशुद्ध दैव-वर्णाश्रम धर्म का प्रवर्त्तन किया है अतएव उनके विषय में प्राकृत विचार बुद्धि रखने पर जगत् का अकल्याण ही होगा।

"और हाँ, मैं तुम्हें स्मरण कराना चाहता हूँ कि मैं अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय हूँ जिसकी कन्या का हाथ माँगने के लिये आये तुम्हारे कुल के व्यक्तियों को मैंने यह कहकर मना

कर दिया था कि हम कुलीन ब्राह्मण होने के कारण आपके साथ पंक्ति भोजन करने को भी घृणित मानते हैं तब फिर अपनी कन्या का विवाह आपके कुल में कदापि सम्भव नहीं। "

उनके द्वारा परिचय देने मात्र से ही गोसाईं जी ने क्षमा प्रार्थना करनी प्रारम्भ कर दी तथा उनके साथ श्रील प्रभुपाद के दर्शन हेतु गये। उसके पश्चात् स्वयं श्रील प्रभुपाद को समस्त यात्रियों के साथ श्रीराधा - मदनमोहन जी के दर्शन हेतु लेकर आये तथा उन्हें अत्यधिक मर्यादा प्रदान की। तब फिर श्रीराधा- मदनमोहन के गोसाईं की देखादेखी अन्यान्य समस्त देवालयों के गोसाइयों ने भी श्रील प्रभुपाद को यथोचित मर्यादा प्रदान की।

एक मात्र बाँके बिहारी के गोसाईं ने ही श्रील प्रभुपाद के शिष्यों के मन्दिर में प्रवेश पर आपत्ति प्रकट करते हुए कहा, “उनकी परिक्रमा के कुछ यात्रियों के पास संन्यास का दण्ड है, जिसे देखकर बिहारी जी भयभीत हो जायेंगे।" उनकी बात सुनकर श्रील प्रभुपाद ने कहा, "यदि ऐसा है तो हम कदापि ठाकुरजी को भयभीत करने के लिये नहीं जायेंगे।"

एक विषयी व्यक्ति से भिक्षा संग्रह

एक समय श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय अपने गुरुभ्राता श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज को साथ में लेकर मद्रास (चेन्नई) में एक कजूस व्यवसायी के पास गये । वह व्यवसायी केवल

तमिल भाषा ही जानता था और इन दोनों गुरुभ्राताओं को तमिल भाषा का एक अक्षर भी नहीं आता था। इसी कारण श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज से कहा, "मैं इस व्यवसायी से केवल इङ्गित के द्वारा ही वार्त्तालाप करूँगा और आप केवल पुनःपुनः अपने संन्यास के त्रिदण्ड को उसकी ओर लेकर जाना और मेरे निषेध करने पर उसे पीछे कर लेना।" "

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने उनसे पूछा, "त्रिदण्ड को आगे-पीछे करने का क्या उद्देश्य है ?"

श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने उत्तर दिया, "उसके द्वारा वह व्यवसायी या तो यह समझेगा कि मैं आपके

नारायण स्वरूप त्रिदण्ड के आशीर्वाद से उसे वञ्चित कर रहा हूँ अथवा यह कि आप उसे नारायण स्वरूप त्रिदण्ड के द्वारा भस्म कर दोगे, और मैं उसकी रक्षा कर रहा हूँ।"

अब जब श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज अपने त्रिदण्ड को उसके समक्ष लेकर जाने लगे तब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उनके दण्ड को रोका तथा उस व्यवसायी को अपने दोनों हाथ के इङ्गित के द्वारा दस दिखलाया। ऐसा देखकर उस व्यवसायी ने अपने हाथ के इङ्गित से एक दिखलाया, तब श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज पुनः अपने त्रिदण्ड को उस व्यवसायी की ओर ले गये और श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने उसे रोका। अब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उन्हें अपनी

नौ अङ्गुलियाँ दिखलायी तथा उसने दो अङ्गुलियाँ। ऐसा करते-करते जब दोनों पाँच-पाँच पर रुक गये तब श्री अतुलचन्द्र प्रभु खड़े हो गये तथा वह व्यवसायी कुछ इङ्गित करके भीतर चला गया।

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने श्री अतुलचन्द्र प्रभु से जिज्ञासा की, "प्रभु, पाँच अङ्गुलियों का क्या अर्थ है ?"

श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने उत्तर दिया, "महाराज, मुझे स्वयं नहीं पता, ५ रुपये, ५० रुपये, ५०० रुपये अथवा अन्य कुछ, जो हो, देखा जायेगा।"

वह व्यवसायी भीतर से पाँच सौ रुपये लाया तथा उसने श्रील

भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज के हाथ में देकर उनसे त्रिदण्ड द्वारा अपने मस्तक पर आशीर्वाद देने हेतु प्रार्थना की। श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने अपने त्रिदण्ड को उसके मस्तक से स्पर्श कराके उसे आशीर्वाद प्रदान किया । उसके घर की चौखट को पार करते समय श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने वहाँ पदाघात किया अर्थात् आते समय वहाँ की भूमि पर लात मारी। जब श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज ने उनसे इसका कारण पूछा तब उन्होंने कहा, "ऐसे व्यक्ति का द्वितीय बार सङ्ग न हो, अन्यथा विषयी हो जाने का भय है। ऐसे व्यक्ति के सङ्ग को पदाघात कर रहा हूँ, केवल पदाघात ही नहीं, घृणा करके पदाघात कर रहा हूँ।"

श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज कहते थे, "श्री अतुलचन्द्र प्रभु मूली की खेती करते थे अर्थात् मूली को जड़ से उखाड़ने की भाँति एक ही बार में जो प्राप्त होता, वह उसे लेकर आते थे तथा पुनः कभी उस व्यक्ति के निकट नहीं जाते थे तथा अन्य लोग बैंगन की खेती करते थे अर्थात् समय-समय पर एक ही व्यक्ति के पास जाकर उससे कुछ-न-कुछ लेकर आते थे। आन्तरिक रूप से एक विचार अन्य की तुलना में उत्तम नहीं है। दोनों ही मात्र भिन्न-भिन्न विचार हैं। देश, काल, पात्र के अनुसार जो भी विचार हरिसेवा के अधिक अनुकूल हो, वही उत्तम है।"

एक रानी से भिक्षा संग्रह

एक समय श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय उड़ीसा में एक स्थान पर गये जहाँ पर निर्मित मन्दिर की परिचालना एक वृद्ध रानी करती थी जो कि रानी माता के नाम से विख्यात थी । एक दिन रानी माता ने अपने सेवक के माध्यम से उनसे जिज्ञासा की, “महात्मा जी, आपको यहाँ रहने में कोई असुविधा तो नहीं है?" श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उत्तर भिजवाया, "यद्यपि सब ठीक है किन्तु तकिये के बिना नींद नहीं आती।”

श्री अतुलचन्द्र प्रभु की बात सुनकर रानी माता ने उनके पास एक तकिया भेजा तथा सम्वाद भिजवाया कि वह इसे अपने पास रख सकते हैं।

जैसे ही श्री अतुलचन्द्र को वह तकिया प्राप्त हुआ वह उसे लेकर श्रीधाम मायापुर की ओर चल दिये। श्रीयोगपीठ में आकर जब उन्होंने उस तकिये को खोला तो उसमें से लगभग ढाई हजार रुपये मिले।

परम्परागत रूप से भारतीय संस्कृति में पुरुष ही साधुओं को भिक्षा देते हैं, स्त्रियाँ नहीं। रानी माता के द्वारा सेवक को भेजने से श्रीअतुलचन्द्र प्रभु समझ गये थे कि वह उनकी किसी प्रकार से सेवा करना चाहती हैं। उनके द्वारा तकिये के लिये प्रार्थना करना रानी माता के लिये गुप्त रूप से भिक्षा देने का एक माध्यम था। श्री अतुलचन्द्र प्रभु की भिक्षा करने की अद्भुत पद्धति को देख

सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो जाते थे। -

सेवा हेतु स्वयं को वकील के रूप में प्रस्तुत करना

नैमिषारण्य के अन्तर्गत सीतापुर जिले के एक व्यक्ति ने वहाँ की रानी की इच्छानुसार पहले तो गौड़ीय मठ के लोगों को मठ के निर्माण हेतु एक स्थान देने की प्रतिज्ञा की किन्तु कुछ समय के पश्चात् एक विदेशी आई० सी० एस० ऑफिसर के- 'यदि रानी के पास अधिक भूमि है तो वह अपनी प्रजा को कुछ करने के लिये दे, बङ्गाल अथवा अन्य किसी स्थान के व्यक्ति को कुछ भी देने से स्थानीय जनता का क्या लाभ ?' शिकायत करने पर उसने गौडीय मठ के लोगों

को स्थान देने की अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने से मना कर दिया।

जब गौड़ीय मठ के भक्त कोलकाता जाने हेतु सीतापुर स्टेशन पर एकत्रित हुए तब परस्पर में वार्तालाप करते समय यह बात श्री अतुलचन्द्र प्रभु के कान में पड़ी। उस दिन दैववश उनकी गाड़ी तीन घण्टे देरी से आने वाली थी। श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने भक्तों से कहा, "मैं उस व्यक्ति से भेंट करके आता हूँ।"

मार्ग में श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने एक उत्पाद - कर पुस्तिका खरीदी। वे कोट-पैंट तो पहनते ही थे, अतएव उत्पाद कर पुस्तिका को बगल में दबाकर वे उस व्यक्ति के समक्ष उपस्थित होकर कहने लगे, मैं गौडीय

मठ का कानूनी सलाहकार हूँ, मैं आपके विरुद्ध मानहानि का मुकद्दमा करने के लिए आया हूँ। कारण, आपके प्रतिज्ञा करने पर गौडीय मठ ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं में नैमिषारण्य में गौड़ीय मठ के प्रस्तावित मठ की घोषणा कर दी थी किन्तु अब आप लोगों के विपरीत निर्णय लेने पर उनका नाम खराब होगा।"

उनकी बात सुनकर उस व्यक्ति ने विदेशी आई० सी० एस॰ ऑफिसर द्वारा लिखित बात दिखायी, जिसे देखकर श्री अतुलचन्द्र ने अत्यधिक उच्च स्वर से कहा, "वह मूर्ख क्या जानता है कि हम यहाँ से कुछ लेने के लिये नहीं बल्कि देने के लिए यहाँ पर भूमि संग्रह कर रहे हैं। हम अन्य स्थानों से अर्थ संग्रह करके यहाँ पर

निवेश करके यहाँ का विकास करेंगे। यहाँ आपके राज्य में कोई एक भी योग्य व्यक्ति नहीं है जो हमारी भाँति ऐसे कार्य को करने हेतु आगे आये और यदि कोई आगे आयेगा भी तो वह देने से बहुत अधिक लेगा तथा हम जितना आपसे लेंगे, उससे दस गुणा अधिक आपको लौटायेंगे। जो हो, अब आप मुख्य विषय पर आइए, अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे या मैं आपके विरुद्ध मामला करूँ।"

जब वह व्यक्ति गौड़ीय मठ के लिये स्थान देने के लिये मान गया तब श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने उनसे दस हजार रुपये जुर्माना स्वरूप देने की बात कही तथा अन्त में वार्तालाप करते-करते पाँच हजार रुपये जुर्माना

स्वरूप लेकर समय पर रेलवे स्टेशन आ गये।

उनकी तीव्र बुद्धिमत्ता

श्री अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय को विदेश में प्रचार सेवा कार्य के लिये भेजने से पूर्व श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ने अपने एक जर्मन शिष्य अर्नस्टजॉर्ज - शुल्ज़ (दीक्षित नाम सदानन्द दास) से पूछा, "विदेश प्रचार में भेजने से पूर्व अतुलचन्द्र को क्या उपाधि देनी चाहिये ? मैं उन्हें ऐसी उपाधि देना चाहता हूँ जो मेरे द्वारा अब तक विदेश भेजे गये समस्त प्रचारकों से उनकी सर्वोत्कृष्टता को उचित ढङ्ग से व्यक्त कर सके।"

श्रीसदानन्द प्रभु ने 'Missionary-inCharge' का सुझाव दिया जो श्रील प्रभुपाद को पसन्द आया। तब उन्होंने श्रीअतुलचन्द्र प्रभु को यह उपाधि प्रदानकर विदेश प्रचार सेवा कार्य के लिये भेजा।

श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने विदेश प्रचार हेतु मठ से एक पैसा भी नहीं लिया, विदेश जाकर वहीं से भिक्षा करके सब कार्य चलाया।

जिस स्थान पर वे रह रहे थे, एक दिन वहाँ पर काम करने वाले एक सेवक ने उनसे कहा, “आपके नाम से लैटर बॉक्स में बड़ा लिफाफा आया है, भीतर नहीं जा पाने के कारण वह

बाहर ही लटक रहा है। अतएव अच्छा हो कि आप उसे अभी उठा लायें।”

जब श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने उस लिफाफे को खोला तो देखा कि उसमें वर्धमान के महाराज ने उनके नाम एक चैक भेजा था किन्तु वह विचार करने लगे कि मेरे पास तो यहाँ मेरे नाम का अंग्रेजी बैंक खाता नहीं है। तब भी, उन्होंने बैंक में जाने का निश्चय किया।

बैंक में मैनेजर ने उनसे कहा, "आपकी पहचान करने वाले किसी एक व्यक्ति के हस्ताक्षर के बिना हम आपके चैक को कैश नहीं कर सकते।"

उस दिन श्री अतुलचन्द्र प्रभु का Marquis of Zetland के साथ हाथ मिलाते हुए एक चित्र समाचारपत्र में

छपा था। श्रीअतुलचन्द्र प्रभु ने देखा कि वही समाचारपत्र मैनेजर की मेज पर ही था, उन्होंने साथ-ही-साथ उस पृष्ठ को खोलकर मैनेजर को वह चित्र दिखलाते हुए पूछा, "यह किसका चित्र है?" उस मैनेजर ने चित्र के नीचे लिखे परिचय को पढ़कर कहा, “Indian monk - A.B. Gosvami and Marquis of Zetland."

तब श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने मैनेजर से कहा, "उस चित्र में और मुझमें कोई अन्तर है?" उनकी बात सुनकर जब मैनेजर ने दो-तीन बार चित्र और उनकी ओर देखा तो श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने पूछा, “क्या हुआ ?"

उसने कहा, "ओह ! आप तो ए० बी० गोस्वामी ही हैं। "

तब श्री अतुलचन्द्र प्रभु ने कहा, “तब फिर आप ही मेरी पहचान कीजिए।" मैनेजर ने वैसा ही किया। ऐसी थी उनकी सुतीक्ष्ण बुद्धि ।

विपरीत परिस्थितियों में भी विश्वास बनाए रखना

श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर की अप्रकट लीला के पश्चात जब सारस्वत गौड़ीय मिशन में बहुत सही तब किसी एक विशिष्ट व्यक्ति से श्री प्रभुपाद के एक विशेष शिष्य के विषय में कहा, "मुझे अमुक व्यक्ति की और उसके दाहिने हाथ उसके भ्राता हूँ' में कोई विश्वास नहीं है। एइ कथाय जार विश्वास तार बापेर मुखे गू' अर्थात् जिन्हें अमुक की 'हाँ' एवं अमुक 'हूँ में विश्वास है उनके पिता

का इन दोनों भाइयों की विष्ठा से भरा होगा। ये लोग हमें ठग रहे हैं, हमें इन्हें अच्छा सबक सिखाना चाहिये।”

“वैष्णवों के द्वारा ठगा जाना, उनकी बात में विश्वास करके अपनी हानि कराना भी किसी विशेष सुखद भविष्यत् का ही कारण बनेगा।”

श्रील गोस्वामी महाराज ने उग्रतापूर्वक नहीं अपितु अपने प्रशान्त स्वभावानुसार शान्तिपूर्वक उन्हें उत्तर प्रदान करते हुए कहा था, "भगवान् सर्वज्ञ हैं तथा वह सदैव अपने भक्तों का पथ प्रदर्शन एवं रक्षा करते हैं । वैष्णवों के द्वारा ठगा जाना, उनकी बात में विश्वास करके अपनी हानि कराना भी किसी विशेष सुखद भविष्यत् का ही कारण बनेगा।

'अर्थात् इन दो भाइयों का संग इतना अधिक हानिकारक है कि वह न केवल उनका सङ्ग करने वाले के अपितु उसके पिता के लिए भी अमङ्गलजनक है। जिस प्रकार सत्सङ्ग पूर्वजों का भी उद्धार करता है उसी प्रकार असत्संग अमंगल प्रस्तुत करता है।

मायापुर में भूमि संग्रह

श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज श्रीधाम मायापुर में जो मठ है, वह उसके लिये स्थान संग्रह करने तथा वहाँ पर म मन्दिर इत्यादि बनाने में सम्पूर्ण अनिच्छुक थे। वह पुन: - पुनः कहते थे, “श्रीधाम मायापुर में श्रील प्रभुपाद द्वारा संस्थापित श्रीचैतन्य मठ तथा मेरे गुरुभ्राता

श्रीमाधव महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ हैं, फिर मुझे अलग से परिश्रम करके किसी स्थान को बनाने की क्या आवश्यकता है? किन्तु मेरे मन में एक अभिलाषा होती हैं कि मेरे गुरुभ्रातागण जितनी अधिक भूमि का संग्रह कर सकते हैं, कर लें। कारण, अन्यथा भविष्य में अवाञ्छित लोग यहाँ पर अपने स्थान बनाकर धाम की पवित्रता को हानि पहुँचाने का प्रयास करेंगे।"

वे यह भी कहते थे, "भूमि खरीदने के लिये जिसे जितने धन की आवश्यकता हो, मैं उसे दूँगा किन्तु उस व्यक्ति को उस स्थान की देख-रेख का दायित्व अवश्य ही ग्रहण करना पड़ेगा। "

श्रील गोस्वामी महाराज की ऐसी दूरदर्शिता श्री. भविष्य में होने वाली परिस्थिति को वे पहले से ही देख लेते थे। आजकल श्रीधाम मायापुर में बहुत से अवाञ्छित लोग आकर भक्ति के विरुद्ध अनेक कार्यों में लिप्त भी थे

श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज ने बहुत हठ करके श्रील गोस्वामी महाराज को श्रीधाम मायापुर में स्थान संग्रह करने हेतु मनाया। इसी कारण, जब उस स्थान पर बबूल के पेड़ के नीचे भित्ति स्थापना का दिवस आया तब श्रील गोस्वामी महाराज ने स्वयं भित्ति नहीं देकर श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराज से ही भित्ति दिलायी।

उस दिन कीर्त्तन के लिए मृदङ्ग, करताल तथा भक्तों के बैठने के लिये दरी आदि हमारे श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ से ही गयी थी। श्रील प्रभुपाद के अनेक आश्रितजनों के द्वारा उस दिन वहाँ पर जो भावपूर्ण कीर्त्तन, परस्पर मर्यादापूर्ण आदर्शमय वार्त्तालाप, व्यवहार तथा गम्भीर हरि कथा का परिवेशन किया गया था, उसे सुनकर मैंने उस दिन स्वयं को परम सौभाग्यशाली तथा धन्य माना था। अन्त में सभी को बताशा प्रसाद दिया गया था किन्तु उसे प्राप्त करके कोई भी असन्तुष्ट नहीं हुआ, बल्कि सभी परम सन्तुष्ट ही हुये थे।

मुझे उस दिन अपने बाल्यकाल में कण्ठस्थ किये एक श्लोक का स्मरण हो आया था -

अजायुद्धे ऋषिश्राद्धे
प्रभातेमेघाऽम्बुरा।
दाम्पत्ये कलहे चैव बभारम्भे
लघुक्रिया

[बकरी के युद्ध में, ऋषि अर्थात् साधु के द्वारा की गयी श्रद्धापूर्वक सेवा में, प्रभात के समय मेघ के शब्द में तथा पति-पत्नी के कलह में आरम्भ तो बहुत जोर से होगा किन्तु अन्त किसी लघु क्रिया के द्वारा ही हो जायेगा।]

यद्यपि उस उत्सव से पूर्व मुझे सर्वदा यही अनुभव होता था कि उपरोक्त श्लोक आजकल के सन्दर्भ में लागू नहीं होता। किन्तु उस दिन मुझे अनुभव हुआ कि यह श्लोक श्रील

गोस्वामी महाराज के उत्सव में सम्पूर्ण रूप से लागू हो गया।

उनकी दीनता का एक दृष्टान्त

जब श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज का श्रीधाम मायापुर में मठ-निर्माण कार्य चल रहा था, तब वे हमारे श्रीचैतन्य गौडीय मठ में गुरु महाराज की भजन कुटीर में ही निवास करते थे। वे समय के अत्यधिक पाबन्द थे, प्रतिदिन एक ही समय पर आते-जाते थे। एकदिन किसी कारणवश वे हमारे मठ में अपने आने के समय से लगभग पाँच मिनट पूर्व आ गये तथा गुरु महाराज की भजन कुटीर में प्रवेश करने से पूर्व गम्भीरतापूर्वक पूछने लगे, "प्रभु, मैं आज पाँच मिनट पूर्व आ गया हूँ क्या

मैं भीतर जा सकता हूँ या फिर मुझे अपनी असमयनिष्ठता के लिये पाँच मिनट प्रतीक्षा करके प्रायश्चित करना चाहिये ?”

जितनी सेवा भलीभाँति करना सम्भवपर हो उतनी ही स्वीकार करो

श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज जब भी किसी उत्सव में वैष्णवों को निमन्त्रण करते थे, तब प्रत्येक मठ से एक या फिर अधिक-से-अधिक दो वैष्णवों को ही निमन्त्रण करते थे। वे कहते थे, "श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने स्वयं आचरण करके हमें शिक्षा प्रदान की है कि मर्यादापूर्वक जितने वैष्णवों की सेवा करना सम्भवपर हो, उतने ही वैष्णवों

को निमन्त्रण करना चाहिये। अधिक वैष्णवों को निमन्त्रण करके उनकी सेवा भलीभाँति नहीं कर पाने पर दोष लगता है। "

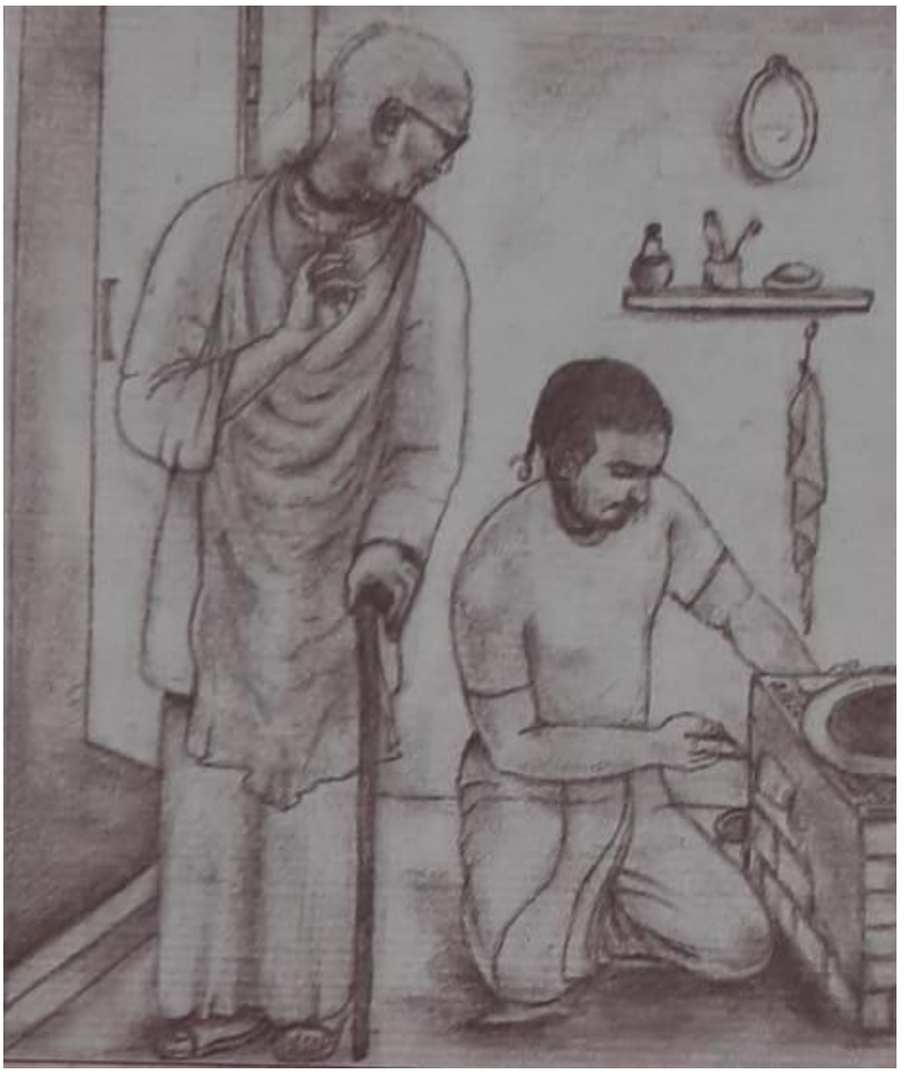

धाम के लिये गहन सम्मान

जब श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज श्रीचैतन्य गौडीय मठ से अपने मठ की ओर जाते थे तब उन्हें

एक ओर उनके सेवक श्रीगौर दास प्रभु तथा दूसरी ओर मैं पकड़कर लेकर जाते थे। एक दिन जब हम श्रीचैतन्य गौडीय मठ से बाहर निकल ही रहे थे, उसी समय हमें उन दिनों मायापुर में नया-नया आया साइकिल रिक्शा दिखलायी पड़ा, जिसे श्रीयोगपीठ में जनरेटर की चौकीदारी करने वाला नीलू चला रहा था। उसे देखकर श्रीगौर दास प्रभु ने श्रील गोस्वामी महाराज से कहा, “महाराज ! रिक्शे पर बैठकर जायेंगे ?"

उनकी बात सुनकर श्रील गोस्वामी महाराज ने अत्यधिक गम्भीर स्वर में कहा, "मैं और धाम में रिक्शे पर चढूँगा, यह कदापि नहीं होगा। हाँ, मैं यह भी जानता हूँ कि तुम लोग भविष्य में कार में यात्रा करोगे,

किन्तु ऐसा करने के लिये तुम मेरी सहमति प्राप्त नहीं कर पाओगे।" वास्तव में अपने सम्पूर्ण जीवन में वह धाम में कभी भी किसी रिक्शे अथवा कार इत्यादि में नहीं बैठे। जब भी किसी रिक्शे अथवा गाड़ी में वह धाम के लिये यात्रा करते थे तो वह धाम की सीमा पर पहुँचने पर वहाँ से आगे पैदल चलना प्रारम्भ करते थे।

श्रीगौर दास प्रभु ने कहा, “महाराज ! कभी-कभी चलते-चलते आपके गिरने का भय लगता है। "

श्रील गोस्वामी महाराज ने परिहास करते हुए कहा, "मेरे गिरने का दायित्व मेरा नहीं है, उसका दायित्व तुम लोगों का है।”

जब वे अपने मठ के समक्ष पहुँच गये, तब उन्होंने अपने एक अन्य प्रिय सेवक श्रीवनविहारी बाबा को बहुत उच्च स्वर में पुकारकर कहा, "वन बाबा, गौर (गौर दास प्रभु) ने मुझे आज मार डाला ! मुझे इतनी दूर यहाँ तक पैदल लाते-लाते थका दिया।"

उनका अपने शिष्यों के साथ इस प्रकार का मधुर एवं रसिक सम्बन्ध था।

सेवा के लिये सब तर्कसङ्गत

एक समय श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज हमारे श्रीधाम मायापुर मठ की गौशाला में अपने सेवक श्रीगौर दास प्रभु के साथ में आये। उन दिनों मैं गायों की सेवा

करता था। गौशाला में दो हृष्ट-पृष्ट बछड़ों को देखकर श्रील गोस्वामी महाराज ने मुझसे पूछा, “इन दोनों बछड़ों की आयु कितनी है। "

मैंने कहा, “महाराज जी, लगभग एक वर्ष।"

उन्होंने निःसङ्कोच भाव से मुझे तुरन्त बोला, "यदि इन दोनों को बैल बना दोगे तो इनसे बहुत से काम ले पाओगे।"

उनकी बात सुनकर उनके सेवक श्रीगौर दास ने उनसे कहा, "महाराज ! क्या आप अपने परिवार में रहने पर ऐसा कर सकने की बात तो दूर, क्या केवल कह भी सकते थे?"

श्रील गोस्वामी महाराज ने कहा, "नहीं, वहाँ पर ऐसी बात कहने से समाज से ही बहिष्कृत होना पड़ता। किन्तु अब मैं ब्राह्मण नहीं, अप्राकृत म्लेच्छ हूँ। म्लेच्छ जैसा आचरण दिखलायी देने पर भी गुरुवैष्णव-भगवान् की सेवा के उद्देश्य से किया गया कार्य प्राकृत नहीं अप्राकृत कहलाता है। सेवा के लिये सब तर्कसङ्गत है।"

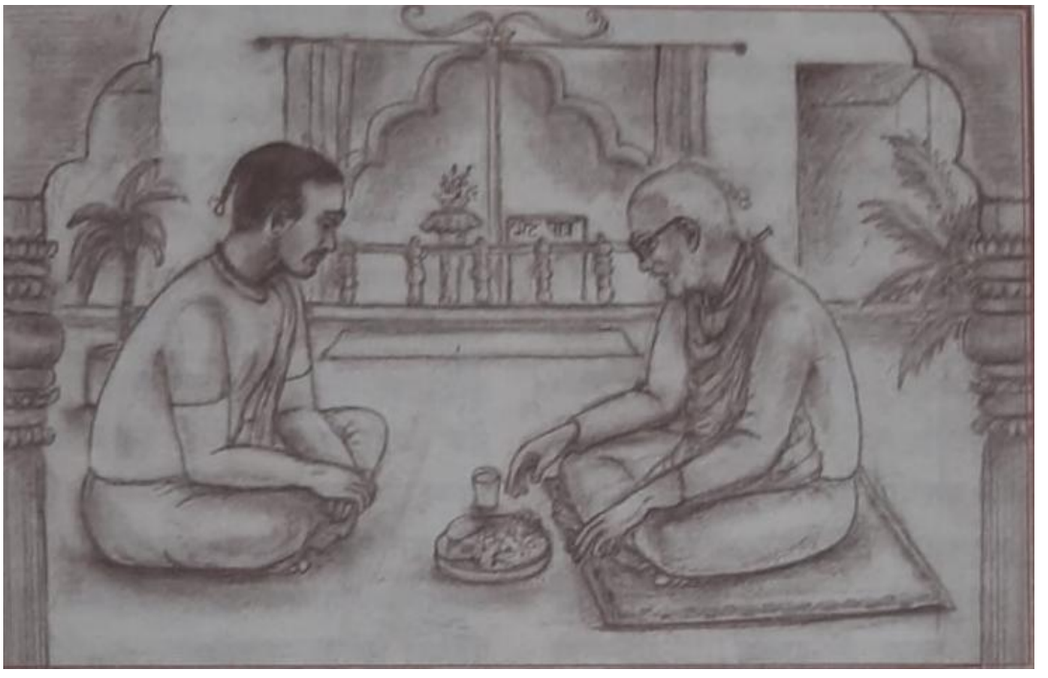

सब परिस्थितियों में श्रीकृष्ण एवं उनके परिकरों का स्मरण करना

एक समय श्रील गोस्वामी महाराज ने मुझसे पूछा, आपका नाम क्या है ? " मैंने कहा, "नरोत्तम दास ब्रह्मचारी।" मेरा नाम श्रवण करने के साथ-हीसाथ श्रील नरोत्तम दास ठाकुर की स्मृति हो आने से उन्होंने कहा, 'आपका नाम नरोत्तम है? तब तो आप मेरे प्रभु हैं। "

श्रीचैतन्यचरितामृत (आदि-लीला ४.८५) में श्रील कविराज गोस्वामी द्वारा उल्लिखित वचन, “जाँहा जाँहा नेत्र पड़े, ताँहा कृष्ण स्फुरे" को जब इस स्थान पर व्यवहार किया जायेगा तो इसका अर्थ किया जायेगा, “जहाँ जहाँ पर भी किसी सिद्ध महापुरुष की दृष्टि पड़ती है वहाँ कृष्ण ही स्फुरित होते हैं।" यहाँ कृष्ण शब्द का तात्पर्य सपरिकर कृष्ण के स्फुरित होने से है।

अतएव मेरा नरोत्तम नाम श्रवण करने मात्र से ही श्रील गोस्वामी महाराज को श्रीकृष्ण के अन्तरङ्ग परिकर श्रील नरोत्तमदास ठाकुर की स्फूर्त्ति हो आयी।

वैष्णवों का यही वैशिष्ट्य होता है, वे सदैव एक ऐसी भूमिका में अवस्थित रहते हैं, जहाँ पहुँचने की साधारण व्यक्ति स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता।

प्रसाद के सभी द्रव्यों का एक समान सम्मान

जब श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज प्रसाद ग्रहण करते थे, तब वे करेले से लेकर परमान्न (खीर) तक सभी को एक साथ मिलाकर ही ग्रहण करते थे। जब मैंने उन्हें सर्वप्रथम ऐसा

करते देखा तब वैष्णव विचारधारा में अधिक प्रवेश नहीं होने के कारण मैंने उनसे कहा, “महाराज, आपने जिस प्रकार सब प्रकार के खाद्य द्रव्यों को मिला दिया है, उससे तो किसी भी द्रव्य के स्वाद का कुछ भी पता नहीं चलेगा।'

“कृष्णप्रसाद अमृत तुल्य है, उसके द्रव्यों में भेद - बुद्धि करना उचित नहीं है। ”

श्रील महाराज ने उत्तर दिया, "इस ढाई इंच की जिह्वा को क्यों प्रश्रय देना। यही सबसे दुष्ट है। क्या तुम प्रतिदिन प्रसाद ग्रहण करने से पूर्व इस श्लोक का कीर्त्तन नहीं करते?

महाप्रसादे गोविन्दे नाम- ब्रह्मणि वैष्णवे।

स्वल्पपुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते ॥

स्कन्द पुराण (उत्कल खण्ड)

[हे राजन! अल्प सुकृतिवान् व्यक्ति का महाप्रसाद, गोविन्द, भगवन्नाम एवं वैष्णव इन चार वस्तुओं में विश्वास नहीं होता॥]

"तथा श्रील भक्ति विनोद ठाकुर ने महाप्रसाद के विषय में क्या लिखा है

शरीर अविद्या जाल, जड़ेन्द्रिय ताहे काल, जीवे फेले विषय सागरे ।
तार मध्ये जिह्वा अति, लोभमय सुदुर्मति, ताके जेता कठिन संसारे ॥

[यह शरीर अविद्या का जाल है। इसमें जड़ इन्द्रियाँ तो काल स्वरूप ही हैं जो जीवों को विषय सागर में डाल देती हैं। उनमें से भी यह लोभी जिह्वा तो अत्यन्त ही दुर्मति है। संसार में इसे जीतना बहुत कठिन है।]

कृष्ण बड़ दयामय, करिवारे जिह्वा जय, स्वप्रसाद - अन्न दिला भाइ ।
सेइ अन्नामृत पाओ, राधाकृष्ण गुण गाओ,
प्रेमे डाको चैतन्य - निताइ ॥

[कृष्ण परम दयालु हैं। उन्होंने जिह्वा को जय करने के लिये अपना अन्न प्रसाद प्रदान किया है। अतः उस अन्न प्रसादरूपी अमृत को ग्रहणकर आनन्दपूर्वक राधाकृष्ण का गुणगान करो तथा प्रेम से श्रीचैतन्य

महाप्रभु एवं श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु को पुकारो।]

"अतएव कृष्णप्रसाद अमृत तुल्य है, उसमं से मुझे करेला कम, खीर अधिक चाहिये, मैं यह नहीं ग्रहण करूँगा, यह ग्रहण करूँगा आदि विचार उचित नहीं हैं।" उसके पश्चात् उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु के वचनों को उद्धृत किया

'द्वैते' भद्राभद्र-ज्ञान, सब- 'मनोधर्म'।
'एइ भाल, एइ मन्द', एइ सब 'भ्रम'॥
चै०च० (अन्त्य - लीला ४.१७६)

[द्वैत अर्थात् प्राकृत वस्तु में भद्र और अभद्र का ज्ञान करना तो मन का धर्म है। वह अच्छा है, यह बुरा है- यह सब तो भ्रम है।]

अन्त में श्रील महाराज ने कहा, "प्रसाद बुद्धि से सब द्रव्यों को एक साथ मिलाकर ग्रहण करने में ही मङ्गल है। "

उनके प्रसाद पाने पर यदि कोई पूछता, “महाराज, प्रसाद कैसा है ?” तो उनका सदैव एक ही उत्तर होता था, “खूब अच्छा बनाया। खूब अच्छा बनाया।" यदि कोई अन्य भक्त कहता, “महाराज, आज यह वस्तु खराब बनी है, इसमें नमक अधिक है या फिर यह वस्तु थोड़ी जल गयी है।" तब सुनने के साथ-ही-साथ कहते, "बुलाओ, बुलाओ, रन्धन करने वाले को बुलाओ, भगवान् की सेवा में अमनोयोग, उसे इसका दण्ड देना पड़ेगा। दो-तीन दिन के लिये उसकी सेवा से छुट्टी करके उसे प्रायश्चित

स्वरूप सदैव क्रन्दन करते हुए हरिनाम करने का उपदेश करना पड़ेगा।"

वे यह सब बातें केवल मुख से ही नहीं कहते थे, बल्कि ऐसा करवाने का आदर्श भी स्थापित करते थे।

वैष्णव सेवा का भगवत् सेवा से अधिक माहात्म्य

श्रील गोस्वामी महाराज पुनः पुनः कहते थे, "मैं मठ में भगवान् की सेवा नहीं, बल्कि वैष्णवों की सेवा के उद्देश्य से आया हूँ। भगवान् की सेवा तो कहीं पर भी प्राप्त हो जाती है, किन्तु भक्तों की सेवा सभी स्थानों पर प्राप्त नहीं होती । भगवान् की सेवा करने से अधिक मङ्गल वैष्णवों की सेवा करने में है। वैष्णवों की सेवा के

माध्यम से ही भगवान् की सेवा की उचित परिपाटी का ज्ञान होता है तथा धीरे- धीरे भगवान् की सेवा में रुचि उत्पन्न हो जाती है। किन्तु भक्त के आनुगत्य के बिना भगवान् की सेवा करने से पारमार्थिक मङ्गल होने में संशय है। "

"मैं मठ में भगवान् की सेवा नहीं, बल्कि वैष्णवों की सेवा के उद्देश्य से आया हूँ।"

सभी वैष्णवों को अपना सेव्य मानना

जब श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज ने अस्वस्थ लीला प्रकट की, तब उन दिनों नवद्वीप, कृष्णनगर आदि में बेंत का बना एक पोर्टेबल

कमोड मिलता था, मैं उनके लिये वही खरीदकर ले आया। उसे देखकर श्रील गोस्वामी महाराज ने मुझसे कहा, "मैं इसे कदापि अपने उपयोग में नहीं लाऊँगा । इसे प्रत्येक बार किसी वैष्णव को साफ करना पड़ेगा जिसके विषय में सोचना भी मेरे लिये सम्भवपर नहीं होगा। मैंने अपने जीवन में कभी किसी भी वैष्णव को अपना सेवक नहीं माना, बल्कि सभी वैष्णवों को भले ही वह नया हो अथवा पुराना, सभी को अपना सेव्य ही माना है। "

मैंने उन्हें बहुत प्रकार की बातें बोलकर उसे उपयोग करने के लिये मनाना चाहा, किन्तु वे मानें नहीं। अन्त में मैंने स्वयं अपने हाथों से उनके लिये ईंटों से कमोड बना दिया,

जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

नवीन मठ निर्माण एवं श्रीविग्रहस्थापन की प्रयोजनीयता के विषय में उनके विचार

एक समय श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज कहीं पर प्रचार कार्य के लिये गये हुए थे तथा वहीं पर किसी ने उनसे प्रश्न किया, "भारत में प्रायः सभी स्थानों पर अनेक मन्दिर हैं तब फिर नये मठमन्दिर आदि की क्या आवश्यकता है? जब स्थापित विग्रहों की सेवा भली-भाँति नहीं हो पाती, तब फिर नये विग्रहों की स्थापना करने की क्या आवश्यकता है?"

श्रील गोस्वामी महाराज ने उत्तर दिया, 'भारत देश की जनसंख्या बहुत अधिक है, उसके कारण बहुत असुविधाएँ भी होती हैं। सरकार ने जनसंख्या को नियन्त्रित करने की इच्छा से बहुत सी योजनाएँ भी चलायी हैं। जो अपनी सन्तान कम करेगा, उसे सरकार से बहुत अच्छी सुविधा भी मिलेगी। ऐसा होने पर भी जिनकी सन्तान नहीं है, वे अपनी ही सन्तान प्राप्ति हेतु हजारों प्रयास क्यों करते हैं? वे अन्यों की सन्तान को गोद लेने अथवा अनाथालय में अत्यधिक कष्ट से रह रहे बालकों में से किसी को प्रसन्नतापूर्वक लेने की अभिलाषा क्यों नहीं करते हैं? कारण, अपने बालक के प्रति जैसी ममता होती है, वह अन्य के बालक के प्रति नहीं हो सकती। इसी अपने द्वारा

प्रतिष्ठित मठ-मन्दिर - विग्रहों के प्रति जैसी ममता होती है, वह अन्यों के द्वारा प्रतिष्ठित स्थान के प्रति नहीं होती।"

वैष्णवों की लीलाएँ बाह्य-दृष्टि से परे

एक समय श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज ने श्रीधाम मायापुर में कुछ ऐसी अस्वस्थ लीला प्रकाशित की जिस कारण उन्हें उपचार के लिये कोलकाता ले जाया गया। उनके सेवकों के साथ मैंने उन्हें पहले नौका के माध्यम से स्वरूपगञ्ज तथा वहाँ से बस के माध्यम से कृष्णनगर तक ले जाकर उन्हें ट्रेन में बैठा दिया और सेवकों को भलीभाँति यह बात समझा दी कि कैसे कोलकाता में डॉ० एन० आर० सेन गुप्त के यहाँ पहुँचना है।

बाद में जब श्रील गोस्वामी महाराज स्वस्थ होकर श्रीधाम मायापुर में आये तब उन्होंने मुझे बताया, “तुम सब लोग जिस प्रकार से मुझे घाट, वहाँ से स्वरूपगञ्ज, कृष्णनगर आदि लेकर गये थे, मैं सब देख- सुन रहा था। मैंने जान-बूझकर कुछ नहीं बोला और सोचा, वैष्णव जो करना चाहते हैं उन्हें करने देना चाहिये।"

श्रील गोस्वामी महाराज ने उस समय की घटनाओं को ऐसे विस्तार से बताया, मैं सुनकर आश्चर्यचकित रह गया तथा मुझे श्रीचैतन्यभागवत (मध्य खण्ड ९.२४०) में लिपिबद्ध श्रील वृन्दावन दास ठाकुर के वचन स्मरण हो आये-

जत देख वैष्णवेर व्यवहार दुःख -
निश्चय हि जानिह सेइ परानन्द सुख ॥

[वैष्णवों के जो व्यवहारिक दुःख दिखायी देते हैं, वे निश्चित रूप में उनके लिये परमानन्द सुख-स्वरूप हैं।]

यद्यपि बाहरी रूप से सम्पूर्ण अस्वस्थ लीला का अभिनय तथापि भीतर में सम्पूर्ण रूप में सचेत । 'वैष्णव चिनिते नारे देवेर शकति अर्थात् वैष्णवों की क्रिया - मुद्रा को समझने में देवता भी असमर्थ हैं'- सम्भवतः उनके इस प्रकार के आचरण को उपलक्ष्य करके ही यह बात कही गयी है।

प्रभावशाली शिक्षाएँ

श्रील गोस्वामी महाराज के आदर्श जीवन चरित्र से हमें निम्नलिखित शिक्षाएँ मिलती थीं

१. भक्त को किसी के विरोध की कभी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये, विपरीत परिस्थितियों में भी कभी घबराना नहीं चाहिये। भगवान् भक्त-वत्सल हैं, अपने भक्तों की सदैव रक्षा करते हैं।

२. भोग-वृत्ति से भजन में अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। भोगी व्यक्ति का कभी मङ्गल नहीं होता। भगवान् अपने प्रसाद की जो भी व्यवस्था हमारे लिये करें, उसी में परम सन्तुष्ट होकर भजन करने से ही उसमें सिद्धि की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं।

३. हरि गुरु- वैष्णव की प्रत्येक सेवा को मनोयोग के साथ में करना ही उनके प्रति भक्त की प्रीति का निदर्शन है।

श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज का निर्याण

श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित

श्रील प्रभुपाद के प्रचार- मिशन के मूलभूत स्तम्भ

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद के प्रचार-मिशन, - जिसका उद्देश्य समस्त विश्व में श्रीमन्महाप्रभु की वाणी का प्रचार करना था, - के सर्वप्रधान स्तम्भों में

अन्यतम थे। इस प्रकार उन्होंने अपने परमाराध्य श्रीगुरुपादपद्म के मनोऽभीष्ट को पूर्ण किया। -

दैन्य की प्रतिमूर्त्ति एवं निर्भीक गुरु-सेवक

पूज्यपाद गोस्वामी महाराज श्रीविश्ववैष्णव- राजसभा के एक विशिष्ट सदस्य थे, साप्ताहिक 'गौड़ीय' पत्रिका के सम्पादक सङ्घ के सङ्घपति थे, आडम्बर-रहित गुरुसेवा के आदर्श-विग्रह स्वरूप थे तथा सर्वोत्तम वक्ता थे। -

अब श्रील महाराज ने श्रीगौरधाम, गौरनाम और गौरमनोऽभीष्ट प्रचारकवर अपने श्रीगुरुपादपद्म परमाराध्य श्रील प्रभुपाद के सुशीतल श्रीचरणकमलों में

नित्य- आश्रय प्राप्त किया है। अपने दिव्य आचरण के द्वारा श्रील महाराज ने जीवन के शेष मुहूर्त्त तक जगत् में निर्भीक गुरु सेवा का एक अपूर्व आदर्श प्रदर्शित किया है। यदि हम उनके आदर्श की एक बूँद का भी अनुसरण करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें, तो हमारा जीवन धन्यातिधन्य हो जायेगा।

उनका विनम्र, अकृत्रिम एवं आदर्श चरित्र

श्रीगौरकरुणाशक्ति श्रील प्रभुपाद के श्रीगौरमनोऽभीष्ट को पूर्ण करने में पूज्यपाद गोस्वामी महाराज प्रधान सहायक थे। श्रीगौरसुन्दर की इच्छा से श्रील महाराज ने एक आडम्बरहीन, अकृत्रिम, आदर्शचरित्र

गुरुसेवक के रूप में इस जगत् में अत्यन्त गरिमायुक्त आगमन किया था। आज उन्होंने अपने महान् सेवाव्रत को सम्पूर्ण कर जड़जगत् से विदा ग्रहण की है।

"कृपा करि कृष्ण मोरे दियाछिल संग।
स्वतन्त्र कृष्णेर इच्छा, हइल संग - भंग ॥"

चै॰ च० (अन्त्य - लीला ११.९४)

[श्रीकृष्ण ने कृपापूर्वक मुझे वैष्णव संग प्रदान किया था। आज श्रीकृष्ण की स्वतन्त्र इच्छा से ही मेरा सङ्ग भंग हो गया ।]

श्रीचैतन्यवाणी (वर्ष ४, संख्या ४) में प्रकाशित एक लेख से अनुवादित

श्रीलगुरुदेव

www.SrilaGurudeva.org